International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 12 Issue 10, October 2022,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

शंकर वेदान्त में भक्ति का स्वरूप

–स्वामी सच्चिदानन्द आचार्य
शोधछात्र
संस्कृत विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
अस्थल बोहर, रोहतक

भक्ति शब्द संस्कृत के 'भज सेवायाम' धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है– 'भगवान की सेवा करना'।[1] महर्षि शांडिल्य के मतानुसार– 'ईश्वर में परानुरक्ति अर्थात् अपूर्व एवं प्रकृष्ट अनुराग रखने को ही भक्ति कहते हैं।'[2] नारद भक्तिसूत्र के अनुसार– 'भगवान के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है।'[3] अपने समस्त कर्मों को भगवान को समर्पित करना और किञ्ित विस्मरण होने पर परम व्याकुल होना ही भक्ति है।[4]

ब्रह्मसूत्र के 'आवृत्तिरकृदुपदेशास्त्रत्' सूत्र की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य जी कहते हैं कि परमेश्वर की निरंतर उत्कंठा युक्त स्मृति ही भक्ति है–

'या निरन्तर स्मरण पतिं प्रति सोत्कण्ठा सेवयभिधोयते।'[5]

श्रीमद् भागवत के अनुसार सांसारिक विषयों का ज्ञान देने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक वृत्तियों का निष्काम रूप से भगवान में लग जाना ही भक्ति है।[6] माध्वाचार्य के अनुसार– भगवान में महात्म्य ज्ञानपूर्वक सुदृढ़ और सतत् स्नेह ही भक्ति है–

माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ सर्वतोऽधिक।
स्नेहोभक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यया।।[7]

गीता में जिस भागवत धर्म का उपदेश दिया गया है, उसका चरम लक्ष्य एकांतिक भक्ति का निरूपण करना है–

सर्वधर्मान् परित्ययामेकं शरण ब्रज।[8]

मोक्ष प्राप्ति के अनेक मार्गों में भक्ति की चर्चा विशेष रूप से आती है। ज्ञान, कर्म, प्रेम और भक्ति– चारों मार्गों की ही अपनी–अपनी महता है। ज्ञानमार्ग सर्वोच्च है परन्तु यह क्लिष्ट है। निष्काम कर्मयोग भी नितान्त क्लिष्ट है। प्रेम और सकाम कर्म बन्धन में डालने वाले हैं। अतः भक्ति मार्ग ही सर्वसुलभ व सर्वश्रेष्ठ है।

भक्ति सभी को सहज रूप से सुलभ है। इसका विपरीत ज्ञान उतना ही जटिल व दुरूह है। सभी जीव स्वाभाविक रूप से सुख चाहते हैं और ऐसा सुख जिसमें देश काल और वस्तु का परिच्छेद

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 12 Issue 10, October 2022,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

किसी को सहन नहीं है और उस सुख की उपलब्धि किसी दूसरे के अधीन न हो, न व्यक्ति के, न साधन के। भक्ति की भावनाओं का उद्‌गम स्थान हमारे मस्तिष्क में अंकुरित भाव होते हैं। वे भाव हमारे मन में परिस्थितियों को जागृत करते हैं। कुछ परिस्थितियां प्राकृतिक होती हैं तो कुछ कृत्रिम होती हैं। उन कृत्रिम परिस्थितियों को हम परिवर्तन कर सकते हैं। सद्‌ग्रन्थों का स्वाध्याय व सज्जनों का सत्संग ही हमारी भक्ति भावना का स्रोत है।

शंकर वेदान्त में भक्ति–

आचार्य शंकर की दृष्टि में दृढ़निष्ठ तत्ववेता वही है जो सर्वत्र (आत्मोपम्येन सर्वत्र की भावना से) आत्मदर्शन करता है। उसे 'मैं और मेरा, तू और तेरा' कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। यही कारण है कि शंकराचार्य ने देवी, विष्णु, गंगा आदि के सुन्दर स्तोत्रों में एकात्म प्रत्यय निष्ठा का ही गान किया है।[9]

शंकराचार्य ने भक्ति का परम प्रयोजन एवं परम सत् की प्राप्ति का एकमात्र साधन माना है। इनकी दृष्टि में माता–पिता और गुरु चरणों में पूर्ण निष्ठ होना भक्ति साधना की प्रथम सीढ़ी है–

'प्रत्यक्ष देवता का माता पूज्यो गुरुश्च करतातः।'[10]

गुरुजनों की कृपा से ही भक्ति की सर्वोच्चता की प्राप्ति की जा सकती है–

यस्य प्रसादादह मेव विष्णु, मय्येव सर्व परिकल्पितं च।
इत्थं विजातामि सदाऽत्यरूपं, तस्याऽघ्रियुग्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम्।।[11]

शंकर वेदान्तानुसार भक्ति ज्ञान की पूर्वावस्था है अर्थात् भक्ति ही आगे चलकर ज्ञान में रूपान्तरित होती है। श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में भक्ति किये बिना अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती और मन शुद्धि हुए बिना ज्ञान का आविर्भाव अथवा स्थायित्व असम्भव है।[12] मुक्ति के जितने भी हेतु है, उन सभी में शंकराचार्य ने भक्ति को ही श्रेष्ठ माना है–

'मोक्ष कारण सामदायां भक्तिदेव गरीयसी।'[13]

संसार की अनित्यता और आत्मस्वरूप शिवत्व को ही उन्होंने अहर्निश ध्येय वस्तु कहा है जिससे श्रीकृष्ण प्रसन्न हो उसे ही विहित कर्म स्वीकार किया है और संसार के प्रति आस्था रखना उचित नहीं माना है–

'अहर्निशं किं परिचिन्तनीयमं, संसार मिथ्यात्व शिवात्मत्वम्।
किं कर्म सद् प्रोतिकां मुरारे, व्कास्था न कार्या सततमावाब्धौ।[14]

श्री शंकराचार्य के अनुसार– मानव तन प्राप्ति का मुख्य उद्‌देश्य आत्मानुसंधान करना है। हमारे भीतर जो आत्मा है, बस वही एकमात्र सत्य है और परमात्मा है किन्तु मिथ्या उपाधियों के कारण जीवात्मा भ्रमित हो रहा है जिसका मूल कारण अज्ञानावस्था है। इस अज्ञानावस्था के कारण जीव के चित्त में उत्पन्न अहम्, इदम् की भावना उसे भगवदोन्मुख नहीं होने देती। मनुष्य देह प्राप्त कर हम

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 12 Issue 10, October 2022,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

अपनी जाति, विद्या, गुण, रूप और यौवन के मद में मतवाले होकर अज्ञानांधकार में डूब रहे हैं। ये पांचों भक्तिमार्ग में कंटक हैं। इनका यत्नपूर्वक परित्याग करके ही भक्तिमार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है–

जाति विद्या महत्व च रूप यौवमेव च।
यत्नेन परितस्याज्या पंचेते भक्ति कण्टका।।[15]

आत्म साक्षात्कार के लिए शंकराचार्य भक्ति को प्रथम स्थान देते हैं। किन्तु उनकी भक्ति एक निराले ढंग की है। उन्होंने हमारे अन्तःकरण की त्रुटियों को पहचान कर भक्ति के विभिन्न स्तरों का विवेचन किया है। साधक की भक्ति का पृथक् और सिद्धि की भक्ति का पृथक्।

शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त का एक मौलिक सिद्धान्त है– आत्मा की स्वयं सिद्धता। शंकराचार्य ने ब्रह्म को निर्गुण व सगुण उभय रूपों में माना है। उनके अनुसार जो ब्रह्म सत् है, वही चतन्य भी है। ब्रह्म सत– रूप है, चैतन्य रूप नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। केवल उपासना भेद के आधार पर ही साकार और निराकार का विभाजन किया गया है। सगुण उपासना में आकार की मान्यता है और निर्गुण उपासना में निराकार स्वरूप की मान्यता है।[16] उनका स्पष्ट मानना है कि कहीं तो ब्रह्म का स्वरूप व जगत भेद इत्यादि उपाधियों से युक्त है और कहीं सर्व उपाधियों से रहित है–

द्विरूपं हि अवगम्यते, नाम रूप विकार भेदोपाधि।
विशिष्टम् तद् विपरीतं च सर्वोपाधि विवर्जितम्।।[17]

शंकराचार्य के अनुसार जीव एवं आत्मा में पारमार्थिक भेद नहीं ह। वस्तुतः जीव शब्द से आत्मा का व्यवहारिक रूप एवं आत्मा से पारमार्थिक ब्रह्म का अद्वैत स्वरूप सिद्ध होता है। आत्मा का ब्रह्म से अभिन्न सम्बन्ध होने से वह भी ब्रह्म के समान ही विभु व व्यापक है। शंकराचार्य के अनुसार जीव और ईश्वर का सम्बन्ध अंशाशिभावमय है– **'अंशों हि नाना व्यपदेशात्'।**[18]

आचार्य शंकर के अनुसार– देह सम्बन्ध से जीव के बंधन और मोक्ष दोनों संभव है। एकात्म रूप होने पर भी जीव के समान ईश्वर दुःखी–सुखी नहीं होता। वह जल में पड़े हुए सूर्य के प्रतिबिम्ब के समान है। वह परमात्मा का आभास मात्र है।

अद्वैत वेदान्त के अनुसार 'मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य है– आत्म साक्षात्कार'। शरीर के भीतर जो आत्मा है, वही एकमात्र सत्य है और वही परमात्मा है। निर्विशेष ब्रह्म का निरूपण करने के अतिरिक्त शंकराचार्य ने उस साधन पद्धति की ओर इंगित किया है, जिसका अनुसरण करके जीवात्मा को अविद्या से मक्ति मिल जाती है। तत्पश्चात् भगवान साक्षात्कार प्राप्त करके वह 'अहं, 'इदम्' आदि की भ्रांत धारणा से सदा के लिए मुक्त हो सकता है। भव बन्धन से मुक्ति दिलाने का एकमात्र साधन भक्ति है–

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 12 Issue 10, October 2022,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

यस्य प्रसादेन विमुक्त संगाः, शुकादयः संसृतिबन्ध मुक्ताः।
तस्य प्रसादो बहु जन्म लभ्यो, मम्येक गम्यो भव मुक्ति हेतु।।[19]

उपर्युक्त 'भक्तयेक गम्यः' पद में इस बात पर जोर दिया गया है कि एकमात्र भक्ति ही मुक्ति का वास्तविक कारण है। शंकर स्वयं कहते हैं–

शुद्धयति हि नान्तरात्मा कृष्णपदोम्मोजभक्ति मृते।
वसनमिव क्षारोदैर्भक्त्या, प्रक्षाल्यते चैतः।।[20]

जीवन मुक्ति के लिए आचार्य शंकर भक्ति को नितान्त आवश्यक मानते हैं। सर्वोत्कृष्ट भक्ति वही है, जो आत्मा व परमात्मा को अभिन्न मानकर की जाती है।

स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्य मिधीयते।
स्वात्म तत्वानुसंधानं भक्तिरित्व परे जगुः।।[21]

परमात्मा सभी नामरूपों के उपर तथा मन और इन्द्रियों से परे हैं। अतएव शंकराचार्य देवता के बाह्य नाम रूपों की अपेक्षा हमारी भक्ति और चितवृति को अधिक प्रधानता देते हैं। भक्ति का पर्यवसान साक्षात्कार में होता है और भक्ति की ही हमें साधना करनी है। शंकराचार्य मानव हृदय को भगवान का मन्दिर मानने पर अधिक बल देते हैं। इस मन्दिर को खोलने के लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है–

असूनायन्यादो यम नियम मुख्यै सकरणै,
निरुद्धयेदं चित्तं हुदि विलयमानीय सकलम्।
यमीड्यं पश्यन्ति प्रवर मतयो मापिनमसौ,
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषय।।[22]

सामान्य रूप से शंकर वेदान्त के मर्मज्ञ एवं समीक्षक दोनों ही ये निष्कर्ष निकालते पाये जाते हैं कि इस दार्शनिक पद्धति में ज्ञान कर्म समुच्चय का पूर्ण विरोध है और शंकराचार्य सत्य साक्षात्कार अथवा मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान को ही एकमात्र साधन मानते हैं। इसमें संदेह नहीं है कि जीवन में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण सृष्टि में ज्ञान को श्रेष्ठ स्थान दिया है। उनके दर्शन में परम ज्ञान की अवस्था ही मोक्ष है। वही परम ज्ञान ब्रह्म है, उसी परम ज्ञानावस्था को प्राप्त कर मानव परम पद उपलब्ध करता है। शंकर वेदान्त में विशुद्ध ज्ञान की अवस्था ही साधन और साध्य दोनों हैं और अनिर्वचनीय ब्रह्म परम ज्ञान स्वरूप ही हैं जिसे उपनिषदों में नाना प्रकार से वर्णित किया गया है। फिर भी मानव जीवन की पूर्णता के लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति में सामंजस्य अनिवार्य है। सामंजस्य होते हुए भी भक्ति का स्थान सदैव विशिष्ट रहा है, यही शंकर वेदान्त का सार है।

संदर्भः

1. पाणिनी अष्टाध्यायी, 3/3/94
2. सा परानुक्तिरीश्वरे– शांडिल्य भक्ति सूत्र/2
3. सात्वस्मिन परम प्रेम रूपा– नारद भक्ति सूत्र/2
4. तदर्पिता खिलाचारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति। नारद भक्ति सूत्र/19
5. शंकरभाष्य (ब्रह्मसूत्र), 4/1/11
6. श्रीमद्भागवत, 3/25, 32, 33
7. महाभारत तात्पर्य निर्णय, 1/86/107
8. गीता, 12/6
9. स्तोत्र रत्नावली; पृ. 267, 278, 283
10. प्रश्नोत्तर मालिका; 5
11. अद्वैतानुभूति; 24
12. प्रबोध सुधाकर : द्विधाभक्ति प्रकरण; 166/67
13. विवेक चूड़ामणि/31
14. प्रश्नोत्तरमालिका/65
15. भक्तमाल; पृ. 5
16. शंकरभाष्य (ब्रह्मसूत्र) /3/2/27
17. वही; 1/1/12
18. वही; 2/3/43
19. शंकर प्रणीत 'सर्व वेदान्त सिद्धान्त सार संग्रह' –11
20. प्रबोध सुधाकर /9
21. विवेक चूड़ामणि – 3
22. श्रीकृष्णाष्टक (शंकर प्रणीत), 8